

बचपन और बाल विकास

F₂

Date
Page 01

Written by- Chhoti Kumari

Unit - 1:

बचपन व बाल विकास की समझ

बच्चे तथा बचपनः मनो-सामाजिक अवधारणा

बचपन की अवधारणा को समझने का प्रमुख

स्रोत मनोविज्ञान रहा है। इसको प्रभावित करने वाला अन्य महत्वपूर्ण स्रोत सांस्कृतिक

ऐतिहासिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं नीतिगत पक्ष है। बचपन की अवधारणा में

बच्चों की छोटी के लिए स्पष्ट है कि उन्होंना हर नीज को सर्वोक्तु लगाना, उल्टना

उल्टना, दुनिया को समझना चाहता है,

उसके बारे में बोलना चाहता है, सुनना

चाहता है, हर बात को विस्तृत करना

चाहता है, कल्पनाएँ करना चाहता है। उनके

उपर्युक्त के कारण उनकी विशेष पहचान होती है।

बच्चों की प्रकृति कई प्रकार

की होती है, जैसे गुप्त बच्चे आज्ञाकारी,

जिज्ञासु, भीले-भाले, चतुर चंगल, परिपक्वता

लिए हुए, नट्टें, गुमसुमारी, गायतुनी,

मिलनसार, ग्रीष्मी, हँसमुख आदि। चुनौतीपूर्ण बच्चे

(परिविष्टिपश्च) चालाक, जिह्वी, जल्पनाशील,

गायमीर, साहसी, दरपीक, नफलनी, मूडी,

राहस्यी, दरपीक, तार्किक और मनमोजी

आदि ही सर्वतो हैं।

बचपन को प्रभावित करने वाले मनोसामाजिक कारक

सभी बच्चों का बचपन एकसमान नहीं होता है।

सभी समाज के अलग-अलग समुदायों में

बचपन की अवधारणा एवं बच्चों की छोटी

अलग रही है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवनकाल

में बचपन सबसे महत्वपूर्ण समय होता है।

तचपन की तई जाते बच्चे के भावी जीवन पर बहुत प्रभाव डालता है। तचपन की प्रभावित करनेवाले प्रमुख कारक -

माता - पिता

1. शिक्षक

2. समाजकी समूह के बच्चे

3. जनसंचार

4. स्वास्थ्य

5. लिंग

6. पौष्टि

7. परिवारिक, समाजिक एवं आर्थिक स्थिति

8. वातापरण

वाल विकास : अवधारणा, विकास के विविध आवाम, प्रभावित करनेवाले कारक

वाल विकास शब्द उन परिवर्तनों से सम्बंधित है जो मनुष्य, मैंडल और बहुत तक होते हैं परन्तु घट शब्द सभी परिवर्तनों पर लागू नहीं होता है। घट केवल उन परिवर्तनों की ओर इंगित करता है जो व्यवस्थित तरीकों से दिखाई देते हैं और पर्याप्त समर्थन तक रहते हैं। घट परिवर्तन जीवन के एक निश्चित समय में होते हैं और जीवन का एक अंग बन जाते हैं।

वाल विकास में उन परिवर्तनों का अद्यगत किया जाता है जो जीवन के प्रथम दो दशकों के दौरान होता है। इसमें मुख्यतः बच्चों के रूप, व्यवहार, रुचिओं और लक्षणों में होने वाले उन विशिष्ट

परिवर्तनी की ओज पर उत दिया जाता है जो एक विकासात्मक अवस्था से दूसरी विकासात्मक अवस्था में प्रवेश करते समय होते हैं। विकास शब्द का अर्थ है - "प्रवरिष्ठत और संगतिपूर्ण तरीके से परिवर्तनी का एक प्रगतिशील शूरुआती में होना है।" बाल विकास में मुख्य रूप से उच्चों के व्यवहार और उन व्यवहारों में समय एवं परिपक्षता के लाभ होने वाले परिवर्तनी की समझने का प्रयत्न किया जाता है। बाल विकास के अद्यतन से उच्चों की स्वामानिक जमताओं में विश्वास बनता है। इससे शिक्षण की अधिक पृष्ठ आधार मिलता है।

बालविकास के विविध आयामः - मनोवैज्ञानिकों ने विकास के द्विटीयों से गर्भांतर गर्भधारण से लेकर पूरे जीवन बाल की निम्नलिखित भागों में बाँटा है -

- | | | |
|-----|-----------------------|----------------------------|
| 1. | प्रसवपूर्व अवस्था | - गर्भधारण से जीवन जन्म तक |
| 2. | शौशावावस्था | - जन्म से 2 वर्ष |
| 3. | पूर्व बाल्यावस्था | - 2 से 5-6 वर्ष |
| 4. | उत्तर बाल्यावस्था | - 6 से 12 वर्ष |
| 5. | तरुणावस्था | - 12 से 14 वर्ष |
| 6. | प्रारंभिक किशोरावस्था | - 13 - 17 वर्ष |
| 7. | पर्याती किशोरावस्था | - 17-20 वर्ष |
| 8. | प्रारंभिक वयस्कता | - 21-40 वर्ष |
| 9. | मध्यावस्था | - 40-60 वर्ष |
| 10. | षट्कावस्था | - 60 वर्ष से मृत्यु तक |

विकास की अवस्थाओं के संबंध में मनोरैशानिकों में परस्पर मतभेद है। अधिकातर मनोरैशानिक सहमत होकर चार अवस्थाओं के अन्तर्गत करते हैं —

शैशावावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा अपरकावस्था।

1) शैशावावस्था (Infancy) जन्म से 2 वर्ष तक

- तीव्र विकास की अवस्था
- उड़ो पर निर्भरता की अवस्था
- गतिविधियों के प्रारंभ होने की अवस्था जैसे - बोलने की जमता, शारीरिक क्रियाओं में तालमैल विठाने की जमता, इन्द्रियों द्वारा अनुभव करने की जमता आदि का विकास होना।

2) पूर्व बाल्यावस्था (Early childhood) 2 वर्ष से 6 वर्ष

- भाषायी विकास का तीव्र गति से होना
- जात्पना शक्ति का विकास होना
- अकेले छोड़ना पसंद करना

3) अंत बाल्यावस्था (Later childhood) 6-12 वर्ष तक

- समाजिकता का विकास होना जैसे - मित्र बनाना, समूह में छोड़ना।
- नैतिक विकास जैसे अनुशासन एवं नियमों का महत्व समझना एवं उनका पालन करना
- जिम्मेदारी उठाने की तत्परता में विकास होना।
- पैशीय कौशल का विकास होना।

4) किशोरावस्था या अपरकावस्था (Adolescence) 13-18 वर्ष

- शारीरिक विकास में तीव्रता आना

- जीन परिपक्वता
- अमूर्त चिन्तन
- निष्ठ संवेगात्मक परिवर्तन
- स्पन्दनता एवं विद्रोह की भावना
- भूमिकाओं एवं दायित्वों का निर्वाहन

बाल विकास को प्रभावित करने वाले कारण -

- 1) जन्म एवं जन्म के पूर्व की परिस्थितियाँ :-
जन्म से पूर्व की परिस्थितियाँ ऐसे हाँ का शारीरिक स्वास्थ्य, पीड़ितों भीजन इत्यादि गर्भ में पल रहे बच्चे के नात्कालिक एवं बाद के दृष्टि एवं विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं।
- 2) वंशानुक्रम :- बच्चे अपने माता-पिता एवं अन्य पूर्वजों के, और गुणों के लिए हीते हैं जैसे :- रंग-रूप, आकृति, मानसिक चोग्यताएँ इत्यादि। ये जन्मजात गुण एक संभावना के रूप में हीते हैं और परिस्थितियों के अनुसार अधिक या कम विकसित हीते हैं।
- 3) लिंग :- बच्चे का लिंग उसके जन्म से लेकर आगे तक हीने वाले विकास के सारे क्रम को प्रभावित करता है, माता-पिता की बच्चे के प्रति हीने वाली अभिष्ठति पर भी लिंग का प्रभाव पड़ता है जिस कारण बच्चे एवं उनकी अद्धिकारों की अपेक्षाकृत लड़कों की अधिक घार, दुलार, स्पन्दनता दी जाती है, परिणामस्वरूप किसी न किसी स्तर पर लड़की के व्यवित्त्व का विकास प्रभावित हीता है।

पौष्टि :- भोजन का प्रकार भी बच्चे के शारीरिक एवं मानसिक विकास को प्रभावित करते हैं। यह भी गया है - "एक स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास होता है।" बच्चे के समुचित विकास के लिए पौष्टिक भोजन अनिवार्य है।

5) शुद्ध पर्यावरण :- शुद्ध जल, वायु एवं सूर्य का प्रकाश बच्चे के विकास के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है क्योंकि इसमें जीवन तत्पर एवं पौष्टि तत्पर पाए जाते हैं जो उन्हें रोगों से दूर करने की शक्ति प्रदान करते हैं।

6) अन्तः एत्रावी ग्रन्थियाँ :- अंतरिक ग्रन्थियों की किपाउँ भी बच्चों के दृष्टि एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, ऐसे - घाइराइड पैरामाइराइड, पीपूष, थाइमस, हड्डीनल आदि ग्रन्थियाँ।

7) परिवार की सामाजिक - आर्थिक स्थिति :- परिवार की सामाजिक आर्थिक स्थिति बच्चे के विकास के निरंतर प्रभावित करती है।

• पृष्ठि एवं विकास : अंतर्संबंधों की समझ, अद्यतन के तरीके

व्याकुन्त की दृष्टि और विकास की प्रीकृति का अद्यतन शिक्षा मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण विषय है। व्याकुन्त दृष्टि और विकास को जाने बिना एक अद्यतापक विद्यार्थियों की सहायता नहीं कर सकता और न ही अपनी शिक्षण व्यवस्था को स्थवरिष्ठत ही कर सकता।

ही अतः वृद्धि व विकास के विचारन पहलुओं पर विचार करना जरूरी है।

वृद्धि का अर्थ :- वृद्धि का अर्थ सामान्य तौर पर मानव के शरीर के विचारन अंगों के विकास और अंगों की कार्य करने की क्षमता माना जाता है। अंगों के इस विकास के परिणाम-रूप उसका व्यवहार में किसी न किसी रूप से प्रभावित होता है। इस प्रकार वृद्धि का अर्थ है - शरीर की वृद्धि।

विकास का अर्थ :- विकास का सामान्य अर्थ मानोनियक विकास से हो। विकास परिपक्वता की एक प्रक्रिया है, वास्तव में विकास शब्द का प्रयोग कभी भी प्रकार के परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त होता है, जिससे कार्य छुश्लता और व्यवहार में प्रगति हो। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वृद्धि की अपेक्षा विकास की संकल्पना व्यापक है। शान विकास के अर्थ में वृद्धि शामिल हो जाती है। अगर वृद्धि मात्रात्मक परिवर्तनों की ओर व्यवहार करती है, तो विकास गणांग के परिवर्तन की ओर सामान्यतः वृद्धि और विकास की प्रक्रिया साथ-साथ चलती है।

Unit - 2:

बच्चों का शारीरिक एवं मनोगतपात्रम् विकास
शारीरिक विकास की समझ

शारीरिक विकास का सन्दर्भ हृषि और शारीर में
आए विभिन्न परिवर्तनों से है जिसमें बालक के
आकार, भार, ऊँचाई, हड्डियों की सीधाई, मनोगतपात्रक
कौशल, हृषि, श्रावण आदि में आए परिवर्तन
सम्मिलित हैं। विभिन्न विकासात्मक अवस्थाओं में
बच्चे के आकार, शक्ति, अंगों तथा जानेनिधियों
में विशिष्ट परिवर्तन आते हैं।

विकास के विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले शारीरिक^{परिवर्तन}
अवस्था

शैक्षावाचस्था

(Infancy 0-2 वर्ष)

व

पूर्व बाल्यावस्था

(early childhood

2-6 वर्ष)

- शारीरिक विकास तीव्र; एक वर्ष के
अन्दर हड्डियाँ, मांसपेशियाँ एवं अन्य
अंग इतने विकसित हो जाते हैं, जिससे
शिशु लैंगने एवं याँहे होने में समर्थ
हो जाते हैं।
- तीन वर्ष की आयु में उसके पूरे दौँत निकल
जाते हैं, हाथ पैर एवं पुट्ठे मजबूत हो
जाते हैं।
- सभी इन्द्रियाँ सक्रिय हो जाती हैं। भार
एवं लम्बाई में निरंतर हृषि होती है।
- 6 वर्ष की आयु तक विकास गति मन्द
हो जाती है। परन्तु उनकी कमेनिधियाँ
एवं जानेनिधियाँ बहुध होती जाती हैं।

2.

उत्तर बाल्यावस्था

(Later childhood

(6-12 वर्ष तक)

- शारीरिक विकास मंद होकर स्थिरता की ओर
हो चुके शारीरिक विकास में हृष्टा।
- शारीरिक जामताओं में अभिहृष्टि होती
है।

3. किशोरावस्था
(Adolescence
12-18 वर्ष तक)

इस अवस्था में किशोर के विभिन्न लक्षण शरीर में परिवर्तित होते हैं। ऐसे - भार एवं लम्बाई में पृष्ठि, शारीरिक संरचना एवं मांसपेशियों में घुट्टूता, दाढ़ी एवं मूँछे निफल आना आदि। किशोरियों में रजोदर्शन २-तरफ़ में उमार, कुल्हों में उमार, शारीरिक आकर्षण में अभिष्टि आदि परिवर्तन आते हैं।

मनोगत्प्रात्मक विकास की समझ मनोगत्प्रात्मक विकास का संबंध मांसपेशियों के कार्य तथा शरीर में गतियों या क्रियाओं की उत्पत्ति से है जो मानसिक क्रिया के सचेतन नियंत्रण के अन्तर्गत होती है। यह गत्प्रात्मक वीश्वासी और निर्देशित होती है ऐसे - गति, समन्वय, परिचालन, दलता, भल, तथा चाल। वज्जों के सर्वांगीन विकास में उनके मनोगत्प्रात्मक विकास का होना आवश्यक है। मानस शिशु जन्म के रूपमय असहाय होता है परन्तु आयु में हृषि के साथ-साथ उपनी मांसपेशियों की गतिविधियों पर नियंत्रण करना सिखने लगता है, और इस नियंत्रण के कारण वीक्रियाओं में विशिष्टता दिखाई दीने लगती है।

वज्जों के शारीरिक एवं मनोगत्प्रात्मक विकास की समझ बालक का शारीरिक एवं मनोगत्प्रात्मक विकास एवं स्पर्मायिक प्रक्रिया है, शरीर के आकार, तंकाली संरचना, अरिथ्यों, मांसपेशियों तथा दाँतों में आए परिवर्तन, वज्जों के शारीरिक विकास में चौंगदान देते हैं। शारीरिक परिवर्तनों के

साथ - साथ मनोगत्पात्रक विकास भी होता है ; जिसमें बच्चों के स्थूल गत्पात्रक लौशाल तथा भूषण गत्पात्रक लौशाल सम्मिलित हैं।

बच्चों में सृजनात्मकता

सृजनात्मकता : अवधारणा, बच्चों के संदर्भ में विशेष महत्व सृजनात्मकता एक विशेष ढंग से चिंतन करने का तरीका होता है जिसे सृजनात्मक चिंतन कहा जाता है। सृजनात्मकता व्यक्ति जो उस लम्ता को कहा जाता है जिससे उह कुछ ऐसी नई चीजों, रचनाओं या विचारों को पैदा करता है जो नया होता है एवं जो पहले से उसे जात नहीं होता, उह एक काल्पनिक क्रिया है या चिंतन संश्लेषण ही सकता है। बच्चों के संदर्भ में सृजनात्मकता के महाव - जिजासु, अपेदनशीलता, अनुशासन, समस्पासमाधान समस्या समाधान को नए तरीकों से हुँदना, समस्याओं का पूर्णत्पारत्या करना, उत्तरदायित्व पूर्ण ढंग से काम करना, अपने विचारों से दूसरों को प्रभावित करना, अग्रसौंची, खुसलिजाज या हास्यप्रिय इत्पादि

बच्चों में सृजनात्मकता विकास हेतु विविध तरीके सूचनाएँ एकत्रित करना - बालकों को कोई विषय देकर विषय से सम्बंधित सूचनाएँ एकत्रित करने के लिए आवश्यक तोर्हीं का सामना करने वाले इतिहासिक पुरुष और महिलाओं का नाम लिखिए।

2. समस्या समाधान के लिए प्रौद्योगिकी करना - विद्यालय के सामने प्राप्त वाई प्रकार की समस्याएँ आती हैं जैसे विद्यालय में हरताल

अनुशासनहीनता, साफ-सफाई की समस्या आदि। पिंडार्थियों को इस बात के लिए प्रौत्साहित किया जा सकता है कि वे समस्या समाधान के लिए अपने सुझाव प्रस्तुत करें।

3. समस्या के भावी परिणामों का विश्लेषण करना - पिंडार्थियों के सामने कई समस्या रखकर उनके परिणामों पर अच्छी भैं विचार जाना जा सकता है ऐसे - देश में सरकार या व्यवस्था बदलने पर समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा।
 4. औंकड़ी का वर्गीकरण एवं अन्वेषण - पिंडार्थियों को विशान सहित संबंधित पुष्ट औंकड़ी देकर उनका वर्गीकरण करने के लिए कहा जा सकता है साथ ही साप अन्वेषण करने के लिए प्रौत्साहित किया जा सकता है।
- सूजनात्मकता : प्रभावित करनेवाले कारक
 → सूजनात्मकता की प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक - संतुष्टि का मिलना, असंतुष्टि, पुरस्कार - निन्दा, सफलता - असफलता, स-वास्तव्य, विकलांगता, उद्धि, शिक्षक, कहा का वातावरण एवं शिक्षण, विद्या, अनुशासन इत्यादि हैं।

Unit - 4

Date _____
Page 12

unit - 4:

खेल और बाल विकास

खेल से आशय : अवधारणा, विशेषता, उच्चों के विकास के संदर्भ में महत्व खेल उच्चों की स्वामानिक भिया है, भिन्न-भिन्न आयु वर्ग के वज्रे विभिन्न प्रकार के खेल खेलते हैं, खेल विभिन्न प्रकार के खेल उच्चों के सम्पूर्ण विकास में सहायण होते हैं, खेल से उच्चों के शारीरिक विकास, संज्ञानात्मक विकास, संवेगात्मक विकास, समाजिक विकास एवं ऐतिक विकास को बढ़ावा दिलता है। विचारों के अनुसार खेल उच्चों की मानसिक द्वारा उच्चों के विकास में भी एक छोटी भूमिका निभाते हैं, याइग्रोत्सकी ते वहाँ है स्फूली शिथि भी तुलना में खेल के दीड़न उच्चों की एकाग्रता, स्मृति आदि उच्चतर स्तर पर काम करती है, उच्चों के प्रथम द्वारों के विकास में खेल की अहम भूमिका होती है।

1) खेल काल्पनाशीलता और सृजनात्मकता को बढ़ावा देती है:- खेल में उच्चे काल्पना द्वारा अलग-अलग भूमिकाएँ निभाते हैं, ऐसा करते हुए उनकी बुद्धि व अपवहार उसी व्यक्ति के अनुसार होता है, जिनकी वह भूमिका कार रहे होते हैं, बालक करना खेल का एक अभिन्न हिस्सा है, इस प्रकार के खेल में बालक वास्तविकता से जट और बहुत जु़छ सृजनात्मक करता है, खेल-खेल में बालक कई सृजनात्मक कार्य करता है जैसे- माचिस ये डिल्की की पक्की द्वारा ऐसगाड़ी बनाना, दुटी प्लैट से अंतरिक्ष यान इत्यादि।

2) खेल शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास को बढ़ावा देती है:- शारीरिक और क्रियात्मक कौशलों का विकास अभ्यास करने पर निर्भर करता है।

उदाहरण के लिए जब चार महीने के एक शिशु के आगे छिलौना रख दिया जाता है तो वज्ञा अपने पीठ से पेट पर पलट कर उस तक पहुँचने का प्रयास करता है इससे उसकी मांसपैशियों का सम्बन्ध बढ़ता है तथा शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास को बढ़ावा दिलता है।

3. खेल भाग्याची विकास में सहायक होता है ० - बच्चे खेल-खेल में बोलना सीखते हैं। खेल खेलने के दीड़ान बच्चों का कई नए काढ़दी रखे परिचय होता है। खेल के द्वारा उन्हें भाषा सुनने तथा बोलने का अधिकारिक अवसर मिलते हैं जिससे उन्हें जाने अनजाने भाग्याची विकास हो जाता है।

4. खेल द्वारा बच्चे समाजिक होना सीखते हैं ० - जब माँ शिशु को नहलाती है, कपड़े पहननाती है, सुलाती है और अन्य सभी आवश्यकताओं का उपयोग करती है इन अंत मियाजी के दीड़ान बालिका माँ को पढ़चानने लगती है पहले शिशु को पहला समाजिक संबंध होता है।

5. खेल भावनात्मक विकास में सहायक होता है ० - खेल क्रियाएँ बच्चों की हर्ष उल्लास, गोदा, भय और दुख व्यक्त करने का एक अवसर प्रदान करती है। खेल में कुछ भी मननाहा करने की छूट होती है। खेल उन भावनाओं और संकेतों की व्यक्त करने का मौका देता है अन्य स्थितियों में अभियंपत्ति नहीं किए जा सकते हैं।

बच्चों के खेल : विविद प्रकार एवं संदर्भ
बच्चों की खेल कियाओं को कई प्रकार से वर्गीकृत
किया जा सकता है। लुप्त वर्गीकरण खेल के व्यापक
के आधार पर किया जा सकता है, लुप्त खेल की
विषय परन्तु पर और अन्य खेल कियाओं पर,
खेल के लुप्त प्रकार निम्न हैं :-

1. मुक्त खेल तथा संरचनात्मक खेल :- इस प्रकार के
खेल में खेल का मुख्य लक्ष्य एवं उद्देश्य की
ध्यान में रखकर खेल का आयोजन करता है। इसमें
बच्चे मुख्य छिलाड़ी के अनुदेशों का पालन करता
है। इस आधार पर खेल को मुक्त और संरचनात्मक
खेलों में वर्गीकृत किया गया है। उदाहरणातः
जब बालक मिट्टी के साथ किसी व्यस्क के हस्तक्षेप
के बिना ही खेल रहा हो तब इसमें मुक्त खेल
कहते हैं दूसरी और आकृति की संरचना समझने
के लिए जब बालक किसी व्यस्क के निर्देश का
पालन करती है इसे संरचनात्मक खेल कहते हैं।

2. बाहरी तथा भीतरी खेल :- नाम से ही स्पष्ट है
युलै मैदान में खेला जानेवाला खेल बाहरी खेल
तथा घर में खेला जानेवाला खेल भीतरी खेल
कहलाते हैं। बाहर खेले जानेवाले खेलों में कियाउं
के अपसर मिलते हैं क्योंकि बाहर स्थान अधिक
व बाहराएँ जम होती हैं। घर के अन्दर खेलेजाने
वाले खेलों में स्थान सीमित होती है और
गतिप्रियियों की स्पन्दनता उपेक्षित जाम होती है।

3. व्यक्ति-गत व्यक्तिगत खेल और सामुहिक खेल
जब बालक अकेले खेलता है तो व्यक्ति-गत खेल
जहलाता है और जब वह दो या दो से अधिक
बच्चों के साथ खेलती है तो वह सामुहिक

खेल कठलाता है। समूह में खेलने के लिए आवश्यक है कि वस्त्रों प्रसरण के दृष्टिकोण को ध्यान में रखे तथा खेल के नियमों का ध्यान करें। जहाँ समुद्र में खेलने से सामाजिक बीशाल बढ़ते हैं वही प्रवितक खेल वस्त्रों को उन वस्तुओं से खेलने का समय देता है जो उन्हें सबसे रुचिकर लगती है।

4. औजस्ती खेल एवं शांत खेल :- ऐसे खेल जिसमें अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। उसे खेल कियाएँ औजस्ती / या सक्रिय खेल कहलाती है, वे खेल जिसमें अधिक बारीरिक क्रिया की आवश्यकता नहीं होती जैसे - जामीन पर चौक से लिखना, चित्र लगाना, मिट्टी से उतारना आदि शांत खेल कठलाती है इसमें अधिक ऊर्जा या नहीं होता है।

5. संवेदी क्रियात्मक (Sensori motor) और प्रतीकात्मक खेल :- बीशावावर-था में उच्चों का खेल है वस्तुओं को छुना, सूखना, चापना और परिवेश की छानबीन करना इन क्रियाओं में इदियाँ संलग्न होती हैं और मांसपेशियों के समन्वय की आवश्यकता होती है इसलिए इन संवेदी क्रियात्मक खेल कहते हैं। बीशावावर-था के अंत तक उच्चे नाटकीय खेल में भाग लेने लगते हैं उच्चे वार-तपिकता से हटकर बर-बर तथा अन्य लोगों की नफल करते हैं। इस प्रकार खेल में वस्तुओं और अन्य लोगों को प्रतीकात्मक रूप में उपरोक्त वानात्मक चीरपता की आवश्यकता होती है। ऐसे खेल प्रतीकात्मक खेल कठलाते हैं।

बच्चों के विविध खेल : सिखने - शिखाने के माध्यम
के रूप में।

बच्चों के सीखने - शिखाने में उनके खेल का
अहम भूमिका होती है।

Unit - 5

बच्चे और उपनिषद्गत विकास
 प्रवित्तिगत विकास के विविध आधार : एरिक्सन
 के सिद्धांत का विशेष असंदर्भ
 एरिक्सन के सिद्धांत के अनुसार पूरा जीवन विकास
 के 8 चरणों से होकर गुजरता है, प्रत्येक चरण
 में एक विशिष्ट विकासात्मक मानक होता है जिसे
 पूरा करने में उमानेपाली समरूपाओं का समाधान
 करना आवश्यक होता है। एरिक्सन के अनुसार
 समरूपा कोई स्कॉर नहीं होती है। बहिक
 संतोषनशील और सामर्थ्य है जो बढ़ाने वाला
 महत्वपूर्ण छिन्दु होता है। समरूपा का प्राकृति जितनी
 सफलता के साथ समाधान करता है उनका उतना
 ही अधिक विकास होता है। एरिक्सन के इस
 सिद्धांत को मनोसमाजिक विकास का सिद्धांत भी
 कहते हैं। एरिक्सन द्वारा वर्णित सिद्धांत के विभिन्न
 चरण निम्नलिखित हैं—

i) विश्वास बनाम अविश्वास (०-१ वर्ष) :- जब शिशु की
 देखभाल अच्छी प्रकार होती है तो उसके अन्दर
 विश्वास की भावना जगती है और उपने आप
 सुरक्षित महसूस करता है। इसके विपरीत जब घर्जों
 में ऐसी भावना का अभाव होता है तो उसके
 अंदर अविश्वास की भावना पैदा होती है।

ii) स्वाधीनता बनाम शर्म (१ से ३ वर्ष) :- बच्चों को
 अभिभावक को चाहिए कि उपने बच्चे को उपनी
 ग्रोग्यता के अनुसार कार्य करने की स्वतंत्रता देनी
 चाहिए। ऐसा करने से उनमें स्वाधीनता की भावना
 विकसित होगी। ऐसा नहीं होने से बालकों में
 उपनी ग्रोग्यता के संबंध में शंका उत्पन्न हो
 जाए।

- iii) पहल उनाम अपराद्ध लीबा (3-6 वर्ष) :- यदि बालकों को प्रयोग करने और हस करने की स्वतंत्रता होती है तो उसमें पहल करने की प्रवृत्ति विलसित होती है। यदि उन पर अतिलंघ लगाये जाते हैं तो लीब की भावना पर्वती है।
- iv) परिक्षाम उनाम हीनता (6-11 वर्ष) :- यदि बालक की प्रोत्साहन मिलता है तो परिक्षामी ही जाता है। इसके विपरीत यदि उसके प्रगास विफल होते हैं तो उनमें हीन भावना उभरती है।
- v) पहचान उनाम भूमिका भ्रान्ति (12-18 वर्ष) :- इस समय व्यक्ति की इन प्रश्नों का सामना करना पड़ता है कि वह कौन है? अगर वह ऐसे व्यक्षसाधी और रीमांटिक व्यक्ति की भूमिका का स्वतः पता चल जाता है। यदि इसके सकारात्मक रास्ते का पता लगाने का मौका न मिले तो पहचान की भ्रान्ति उत्पन्न होती है।
- vi) धनिष्ठता उनाम अकेलापन (18-35 वर्ष) :- मुका अपने अभिज्ञान को दूसरों के साथ मिला देने का इच्छुक होता है। वह धनिष्ठता के लिए तैयार हो जाता है। इस स्तर का भंगट है कि धनिष्ठता का अनुभव नहीं होने पर अकेलापन की भावना उत्पन्न होती है।
- vii) उत्पादकता उनाम स्थिरता (35-64 वर्ष) :- उत्पादकता प्राणमिक रूप में नहीं जीदी जो निर्देश देने से अवृद्धि होती है जो इस प्रक्रिया से अलग रहते हैं, उसमें उत्पन्न। स्थिरता आ जाती है।

viii) संपूर्णता ज्ञान निराशा (65 से मृत्यु तक) :- इस अपास्था में उपवित वह स्वीकार लेता है कि जैसा भी हो उसके जीवन का एक है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता है। जहाँ वह तात्पर्य है कि वह अपने जीवन से संतुष्ट रहता है। इसके विपरीत उपवित जब संतुष्ट नहीं होते हैं तो उनके जीवन में धौर निराशा का भाव उत्पन्न होता है।

• बच्चों में भावनात्मक / संवेगात्मक विकास का पहलू : जॉन बॉली का सिद्धांत एवं अन्य विचार

जॉन बॉली का सिद्धांत -

[लगात एक प्रकार का भावनात्मक संश्लेषण है जो दो व्यक्तियों को आपस में बांधता है। वह संबंध समझ और दूरी के बावजूद बना रहता है। लगात की सावना तब और प्रबास हो जाती है जब ओरिजिनल किशोर के क्रियाओं पर प्रतिक्रिया देते हैं तथा उसे सहज महसूस करते हैं। जब किशोर को उनकी आवश्यकता पड़ती है खासकर तब जब वह बीमार हो, धारण दी या फिर वह संवेगात्मक रूप से दुःखी हो।

लगात किशोर के संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास के लिए बहुत आवश्यक है। यदि किशोर के आवश्यकताओं की पूर्ति उही समय पर होती है तो वह विश्वास करना सीख लेता है। और यह दूद को सुरक्षित और मूल्यवान महसूस करने लगता है।]

बॉली का सिद्धांत - जॉन बॉली को वह सिद्धांत लगात की गहराई को समझती है। इसीलिए जॉन बॉली ने एक मनोसमीक्षक के नजीर्ये से किशोर और पातनहार के संबंध को समझाने की कोशिश की। जॉन

बांलवी छारा संशोधित सिद्धांत लगाव के विकास की चार अवस्थाओं पर आधारित है —

i) जगाव से पहले की अवस्था (जन्म से डेढ़ माह) —

इस दौरान शिशु पकड़ना, मुस्कुराना, बौना, व्यस्कों में आँखें और डालफर देखना या नजर मिलाना, उपयोग करके आस-पास के लोगों के साथ क्रियाओं को संकेतों के तरह उपयोग करते हैं। बच्चे को जो अच्छा जगता है जब उन्हें कोई गोद में लेता है, पीछे घपथपाता है, भौंरी सुनाता है या एयर बैने कुछ कहता है।

ii) जगाव निर्माण की प्रक्रिया की अवस्था (डेढ़ माह से 6-8 महीने तक) —

यह घट समय है जब शिशु परिचित, पालनहार या माँ और अन्य व्यस्कों में पाक को पहचानते हैं जो उनके व्यवहार में अंतर करते हैं तिर मी उनसे जुदा किये जाने पर वे सखा पतिरोध नहीं करते लेकिन उन्हें यां माँ या पालनहार के अपरिधित में ज्यादा व्यावधिक एवं सहज महसूस करते हैं।

iii) लगाव निर्माण पूरी होने का अवसर-था (6-8 माह के 1-2 वर्ष तक) —
 इस अवसरा में साफ तौर पर शिशु पालनहार का नाता प्रस्तुति होता है। इस उम्र के बच्चे समझने के पस्तु के आँखों से ओडल होने वरफरार रहता है। गायब होने से उनके अभिभावक रक्षण पालनहार नहीं हुए हैं। इसी कारण उनके दृश्य - उपर जाने पर रोने लगते हैं और उनको रनाथ रखने की कोशिश करते हैं। उनका पीछा करके उनके ऊपर चढ़ने की कोशिश करने लगते हैं।

iv) विपरीत संबंध का निर्माण (1-2 वर्ष)
 और उसके बाद) —
 ये वर्ष के उम्र के बच्चे माझा और माव की प्रस्तुति में दृष्टियाँ जिससे इसिल करने लगते हैं कि वे समझने लगते हैं कि माता - पिता के आने में देरी का कोई कारण होगा और किसी वजह से नहीं। वे बच्चों से दूर भी जाते हैं। इससे वे व्यसकों के आस - पास न होने से उतने विचलित नहीं होते और न भी। उनके लुरंत आने पर बोते हैं एक और अंतर जो बच्चे के

प्रतहार में देखे जाते हैं वह यह है कि बड़ों का पीछा करने के बजाय वे इस अमेरिकी में उन्हें सोफने के नये तरीकों को अपनाते हैं। ऐसे - मौखिक रूप से जिद्द करना

11/06/19, Tuesday

-X संज्ञानात्मक विकास :-

संज्ञान का अर्थ उन मानसिक प्रक्रियाओं
तथा उन उत्पादों के हैं जिनसे
ज्ञान पा निर्माण होता है। इसके
अंतर्गत विभिन्न मानसिक प्रक्रियाएँ आती
हैं जैसे - याद रखना, संकेतीकरण,
योजना बनाना, समस्या समाधान,
वर्गीकरण कर पाना, फलन्पत्राएँ कर
पाना, नयी - नयी चीजों एवं संकल्पों
का व्युत्पन्न करना। मनुष्य के जीवन
में संज्ञानात्मक विकास का विशेष
महत्व है। क्योंकि कारण मनुष्य
स्वयं को पातावरण के अनुरूप
दाल पाते हैं।

⇒ जिन पियाजे का संज्ञानात्मक विकास -
 जीन पियाजे का संज्ञानात्मक विकास
 के सिद्धांत का विशेष योगदान है।
 शिवटजरलैण्ड निवासी जिन पियाजे,
 प्राणी विज्ञान के क्षेत्र में विद्वा
 प्राप्त की। पियाजे के अनुसार उच्चे

क्षुरुआत के दृष्टि के लोगों की मानि संकल्पनाओं को नहीं समझते, अलिक वह अपने प्रत्यक्षण और अपनी पेशीय गतिविधियों के द्वारा संकल्पनाओं का निर्माण एवं उसमें संबोधन करते हैं।

⇒ संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थाएँ —

पिण्डित के अनुसार, ब्रिंशु के ग्रीजपूर्ण व्यवहार के लिए अभूत तर्फ संगत तक सभी बच्चे चार अवस्था में गुजरते हैं।

i) संवेदी पेशीय अवस्था (Sensor motor stage) (0-2 वर्ष)

प्रारंभिक काल को संवेदी पेशीय अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में बच्चे अपनी ज्ञानान्वितयों द्वारा देखना, सुनना, छुना, परखना, सूचना, चलना आदि कियाजाते हैं। इस अवस्था में किसी भी स्थिति पेशीय गतिविधि द्वारा सीखता है। इसका अभिप्राय है कि बच्चे यह किसी लगते हैं कि यदि उसके ऊपर लगते हैं तो उसके सामने उपरिथर्ता नहीं है।

(ii) पूर्व - संक्रियात्मक अवस्था (Formal Pre-Operational Stage) — (2-7 वर्ष)

संबोधी पेशीय अवस्था के अंत तक बच्चे बहुत - सी क्रियाएँ करने लगते हैं। इस अवस्था में बच्चे मानसिक संक्रिया करना परम प्रते हैं। मानसिक रेखिया को अभिप्राय सौच के साथ किया करना एवं मन - मस्तिष्क में समस्या को हल करने का प्रयास करना। पूर्व - संक्रियात्मक अवस्था में बच्चे निपुणता की ओर बढ़ते हैं परंतु वह भी पूरी रूप से मानसिक संक्रियाओं में निपुण नहीं होते क्योंकि उन्हें संक्रिया करने हैं। इस अवस्था में बच्चे ट्रैट कार्य जारीरिक क्रियाओं के लाए जाने करके सांकेतिक मानसिक क्रियाओं को प्रयोग करने परत हैं। इस अवस्था में बच्चे शालक, संकृत, चिह्न, छाव - भाव आदि का प्रयोग कर पाता है।

(iii) मूर्ति - संक्रियात्मक अवस्था (Formal Operational Stage) (7 - 11 वर्ष)

मूर्ति संक्रियात्मक अवस्था में बच्चे प्रातापरण में उपस्थित ताकिक अवस्था को समझ पाते हैं। वह यह समझ पाते हैं कि आकृति या आकार में परिवर्तन के द्वारा छावजूद चीजों की स्थिति समान रहती है तथा यह परिवर्तन चरणों को तुलते हैं परंतु प्रारंभ करके मात्र देख सकते हैं।

इस अवस्था में एक और महत्वपूर्ण है वह है कि ज्ञानता का विकास होता है वग़ीरता के बदलने का। उच्चे उक्त चीजों को समृद्धि में बाट सकते हैं। ऐसे - मूर्गी की शुद्धरमुर्गी आदि सभी पक्षियों के लिए आते हैं। वे चीजों, जिनको आसानी करने के क्रम में छोटे से बड़े, भगा सकते हैं। उदाहरण के लिए, यदि राम, श्याम से लंगा है और श्याम, हीना से भगा है तो राम हीना से लंगा है।

(4) अमूर्त अंकियालय अवस्था (Operational Stage) (II वर्ष से अधिक) कई अवस्था के दौरान उच्चों में अमूर्त अंकियाओं का विकास होता है तथा वे उन्हें सीधी विकास का प्रयोग एक ही समय पर कर पाते हैं। यह आवश्यक नहीं कि उच्चे जिस विधति के बारे में कोच रहा हो उस विधति का अनुमति दिया ले। इह मात्र कल्पना कारा अनुमति दियति को जामने सकते हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसान खेती करना चाहता है तो क्या होगा? कई अवस्था में उच्चे में निगमन, नालिक, निंतन का

विकास होता है। यह समस्या समाधान की एक विधि है। जिसमें एच्चे समस्या के सभी ऊरकों की पहचान करता है कि तथा निगमन विधि का प्रयोग कर समस्या का विश्लेषण करता है।

-X पैरेलर्स का कलासिक अनुबंधन सिद्धांत —

(classical conditioning)

I.P. पैरेलर एक इसी वैज्ञानिक (शारीर) थे। जिन्होंने पाचन क्रिया का विश्लेष दृष्टि से अध्ययन करना प्रारंभ किया और उनका यह अध्ययन डत्ता लोकप्रिय 1904 में 'नोबेल' पुरस्कार भी दिया गया। पैरेलर ने इस अध्ययनों के दौरान भारमय अनुबंधन की पटना का अध्ययन किया और इससे संबंधित सीखने के एक सिद्धांत का प्रतिपादन किया, जिसे 'अनुबंधित अनुक्रिया' सिद्धांत कहा जाता है। पैरेलर ने अपने सिद्धांत का आधार अनुबंधन को माना है। अनुबंधन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा उद्यीपन तथा अनुक्रिया के बीच एक साहचर्य स्थापित होता है। पैरेलर के सीखने के इस अनुबंधन सिद्धांत को 'कलासिक अनुबंधन सिद्धांत' कहा जाता है।